International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 14 Issue 3, May-June, 2026

1857 का विद्रोह और राव तुलाराम

परवीन[1], डॉ. यशपाल सिंह

[1]शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर -124021, रोहतक
[2]शोध निर्देशक, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर -124021, रोहतक

शोध सारः

1857 का विद्रोह, जिसे अक्सर भारतीय स्वतंत्रता का पहला युद्ध कहा जाता है, भारत के ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ। दिल्ली, कानपुर और लखनऊ जैसे महत्वपूर्ण शहरों में हुई घटनाएँ, जहाँ विद्रोह ने एक बड़े पैमाने पर और सुव्यवस्थित रूप ले लिया था। इन शहरों को स्वाभाविक रूप से बाद के इतिहासकारों के साथ–साथ उस समय के पर्यवेक्षकों से भी अधिक ध्यान मिला, जिसका मुख्य कारण इनका प्रतीकात्मक महत्व, बड़ी आबादी और मुगल या ब्रिटिश सत्ता के साथ इनका सीधा संबंध था। लेकिन लोकप्रिय ऐतिहासिक विवरणों में, इस विद्रोह में हरियाणा जैसे छोटे क्षेत्रों द्वारा निभाई गई भूमिका को काफी हद तक नजरअंदाज कर दिया गया है। हालाँकि, हरियाणा ने इस विद्रोह में एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसकी विशेषताएँ थीं: कड़ा विरोध, क्षेत्रीय नेताओं और सरदारों का मार्गदर्शन, और ग्रामीण जनता की उत्साहपूर्ण भागीदारी। दिल्ली, कानपुर और लखनऊ जैसे बड़े शहरों में हुई सुव्यवस्थित और चर्चित घटनाओं के बीच, हरियाणा जैसे छोटे क्षेत्र अक्सर भुला दिए गए हैं। जनता की भागीदारी, स्थानीय नेताओं के नेतृत्व में हुए प्रतिरोध, और व्यापक राष्ट्रवादी उद्देश्य में इस क्षेत्र की भूमिका पर प्रकाश डालने के लिए, यह लेख 1857 के विद्रोह में हरियाणा द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका और मुख्य रूप से राव तुलाराम के योगदान का की पड़ताल करने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्दः1857, ब्रिटिश, हरियाणा, विद्रोह, बगावत, राव तुलाराम

परिचयः

1857 का विद्रोह, जिसे सिपाही विद्रोह या भारतीय स्वतंत्रता का पहला युद्ध भी कहा जाता है, एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना थी जो भारत के विशाल क्षेत्रों में फैल गई और इसने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की नींव को ही हिलाकर रख दिया[1]। इस विद्रोह की जड़ें उस गहरी नाराजगी में थीं जो दशकों से चले आ रहे ब्रिटिश शोषण और भारतीयों के जीवन में उनके दखल के कारण जमा हो गई थी[2]। हालाँकि इस विद्रोह को अक्सर दिल्ली, लखनऊ और कानपुर जैसे मुख्य केंद्रों से जोड़ा जाता है, लेकिन हरियाणा जैसे छोटे क्षेत्रों की भूमिका जो उस समय पंजाब का हिस्सा था[3], भी इस विद्रोह के पैमाने को समझने में उतनी ही महत्वपूर्ण है[4]। 1857 में, हरियाणा कोई अलग राजनीतिक इकाई नहीं थी, बल्कि ब्रिटिश शासन के अधीन बड़े पंजाब क्षेत्र का हिस्सा थी। हरियाणा, जिसकी अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित थी, औपनिवेशिक प्रशासन की दमनकारी भू–राजस्व नीतियों से बुरी तरह प्रभावित हुई थी। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा लगाए गए भारी करों और आर्थिक शोषण का स्थानीय किसान समुदायों पर बहुत बुरा असर पड़ा, जिससे ग्रामीण जनता में भारी असंतोष फैल गया[5]।

स्थायी बंदोबस्त जैसे शोषणकारी भूमि कानूनों की शुरुआत ने जमींदारों और किसानों की स्थिति को और भी बदतर बना दिया, जिससे बड़े पैमाने पर कृषि संकट पैदा हो गया। सांस्कृतिक रूप से, हरियाणा के लोगों का योद्धा और सैनिक होने का एक लंबा इतिहास रहा है। उनकी जड़ें उन लड़ाकू समुदायों से जुड़ी थीं जिन्होंने मराठों, मुगलों और यहाँ तक कि ब्रिटिश सेना में भी सिपाहियों के रूप में विभिन्न स्थानीय सेनाओं में सेवा की थी। इस मजबूत सैन्य परंपरा ने इस क्षेत्र को विद्रोह के लिए एक उपजाऊ जमीन बना दिया, जब भारतीय सिपाहियों या सैनिकों के बीच ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष फैलने लगा। अपनी आर्थिक कठिनाइयों और

सैन्य विरासत के कारण, हरियाणा के लोग इस विद्रोह के आह्वान को स्वीकार करने के लिए विशेष रूप से तत्पर थे। ब्रिटिशों द्वारा भारतीय जमीनों पर कब्जा, स्थानीय सरदारों और राजाओं को सत्ता से हटाना, और ईसाई मिशनरी गतिविधियों का विस्तार; इन सभी बातों ने इस क्षेत्र की आम जनता और संभ्रांत वर्ग के बीच दूरियों को और बढ़ा दिया। इस प्रकार, हरियाणा के लोग जो अपनी संप्रभुता को पुनः प्राप्त करने और विदेशी प्रभुत्व का विरोध करने के लिए उत्सुक थे, 1857 के विद्रोह की चिंगारी को समर्थन देने के लिए पूरी तरह तैयार थे।

1857 का हरियाणा विद्रोह उस बड़े औपनिवेशिक–विरोधी आंदोलन का ही एक हिस्सा था जो पूरे उत्तरी भारत में तेजी से फैल रहा था। एनफील्ड हथियार, जिसके कारतूसों के बारे में यह अफवाह थी कि उन पर गाय और सूअर की चर्बी लगी है जिससे हिंदू और मुस्लिम, दोनों ही सैनिकों में रोष फैल गया था; विद्रोह के मुख्य कारणों में से एक था। असंतोष तेजी से फैला, विशेष रूप से हरियाणा में, जहाँ बड़ी संख्या में सिपाहियों को ब्रिटिश सेना में भर्ती किया गया था[6]। इन सिपाहियों ने इन कारतूसों के इस्तेमाल को अपनी धार्मिक मान्यताओं पर सीधा हमला माना, क्योंकि वे ग्रामीण इलाकों से आते थे जहाँ मजबूत धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराएँ थीं। लेकिन यह विद्रोह केवल कारतूसों के इस्तेमाल से कहीं ज़्यादा कारणों से हुआ था।

इस विद्रोह के पनपने में एक बड़ा कारक औपनिवेशिक सरकार का क्षेत्रीय सामाजिक–आर्थिक व्यवस्थाओं में दखल देना, स्थानीय संभ्रांत वर्ग को सुनियोजित ढंग से अलग–थलग करना, और भारतीय जनता की भावनाओं के प्रति आम तौर पर उपेक्षा का भाव रखना था। हरियाणा के किसान, सैनिक और जमींदार ब्रिटिश शासन का विरोध करने के लिए एकजुट हो गए।

राव तुला राम का योगदानः

राव तुला राम का जन्म 1825 में रेवाड़ी की रियासत में हुआ था। यह क्षेत्र दक्षिणी हरियाणा में रणनीतिक और राजनीतिक महत्व रखता था। वे अहीर (यादव) समुदाय से ताल्लुक रखते थे, जिसकी सैन्य सेवा और स्थानीय शासन की एक लंबी परंपरा रही थी। उनका परिवार रेवाड़ी के शासक वंश का हिस्सा था और मुगल साम्राज्य की घटती सत्ता के तहत, और बाद में ब्रिटिशों के अप्रत्यक्ष नियंत्रण के तहत, उन्हें काफी हद तक स्वायत्तता प्राप्त थी।

उनके पिता, राव पूरन सिंह, रेवाड़ी के शासक थे, और उनकी मृत्यु के बाद, तुला राम ने काफी कम उम्र में ही रियासत के प्रबंधन की जिम्मेदारी संभाल ली। प्रशासन और नेतृत्व का यह प्रारंभिक अनुभव उनके राजनीतिक दृष्टिकोण को गढ़ने में एक निर्णायक भूमिका निभा गया। उन्हें युद्ध–कौशल, राजस्व प्रशासन और कूटनीति का प्रशिक्षण दिया गया था ये ऐसे कौशल थे जो बाद में 1857 के विद्रोह के दौरान अत्यंत आवश्यक साबित हुए।

19वीं सदी की शुरुआत में, इस क्षेत्र की राजनीतिक स्थिति में तेजी से बदलाव आ रहे थे। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के विस्तार के साथ, रेवाड़ी सहित कई स्थानीय शासकों ने अपने पारंपरिक अधिकार और विशेषाधिकार खोना शुरू कर दिया था। ब्रिटिश नीतियों, विशेष रूप से भू–राजस्व और प्रशासनिक केंद्रीकरण से संबंधित नीतियों ने, स्थानीय सरदारों की स्वायत्तता को कम कर दिया और व्यापक असंतोष पैदा कर दिया।

राव तुला राम इन बदलावों और स्थानीय सत्ता के धीरे–धीरे क्षीण होने की प्रक्रिया को देखते हुए बड़े हुए। इस माहौल ने उनके भीतर औपनिवेशिक हस्तक्षेप के विरुद्ध प्रतिरोध की एक प्रबल भावना जगा दी। अपने समकालीन कई ऐसे शासकों के विपरीत, जिन्होंने ब्रिटिशों के साथ सहयोग करना चुना, तुला राम ने एक स्वतंत्र और दृढ़ राजनीतिक रुख अपनाया। उनके प्रारंभिक अनुभवों ने न केवल उनके नेतृत्व गुणों को निखारा, बल्कि 1857 के विद्रोह में उनकी सक्रिय भागीदारी के लिए वैचारिक आधार भी तैयार किया।

इस प्रकार, उनकी पृष्ठभूमि पारंपरिक सत्ता, सैन्य प्रशिक्षण और राजनीतिक चेतना के एक ऐसे मेल को दर्शाती है, जिसने हरियाणा में विद्रोह के प्रमुख नेताओं में से एक के रूप में उनके उभार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हरियाणा इलाके के सबसे जाने–माने लोगों में से एक, ब्रिटिश सैनिकों के खिलाफ बगावत को लीड करने में अहम थे। उन्होंने रेवाड़ी से एक ताकतवर सेना इकट्ठा की और नॉर्थ इंडिया के बागी नेताओं के साथ अलायंस

बनाया, जिसमें आखिरी मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर भी शामिल थे। राव तुला राम के सैनिकों ने अंग्रेजों के साथ कई झड़पों और लड़ाइयों में हिस्सा लिया, खासकर गुड़गांव और रेवाड़ी के आस–पास। भले ही वह आखिर में हार गए, लेकिन बगावत के लिए उनकी कोशिशें आज भी हरियाणा की मजबूती का सबूत हैं। बगावत के दौरान, राव तुला राम हरियाणा के सबसे जाने–माने कमांडरों में से एक थे। वह रेवाड़ी के रहने वाले सरदार थे, जो ब्रिटिश सैनिकों का विरोध करने में अहम थे।

राव तुला राम ने दिल्ली में बहादुर शाह जफर जैसे दूसरे बागी नेताओं के साथ रिश्ते बनाए और ब्रिटिश मिलिट्री करों के बारे में जानने के बाद इलाके के लोगों की एक बड़ी सेना बनाई। उन्होंने रेवाड़ी में अपने किले की कामयाबी से रक्षा की और वहां तैनात ब्रिटिश सैनिकों के खिलाफ कई सैनिक अभियान किए। राव तुला राम का नारनौल की लड़ाई में हिस्सा लेना, जब उनकी सेना ने बहादुरी से ब्रिटिशों का मुकाबला किया, उनकी बड़ी कामयाबियों में से एक थी। भले ही वह हार गए।

युद्ध के दौरान, उनके नेतृत्व और दृढ़ता ने हरियाणा और उसके बाहर के कई लोगों को ब्रिटिश शासन का विरोध जारी रखने के लिए प्रेरित किया। युद्ध में हार के बाद राव तुला राम अफगानिस्तान चले गए और अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई जारी रखने के लिए अन्य देशों से सहायता मांगी। इस प्रयास में असफल रहने के बावजूद, 1857 के विद्रोह में उनकी भागीदारी को हरियाणा के प्रतिरोध के इतिहास का एक महत्वपूर्ण पहलू माना जाता है।

राव तुला राम के अंतर्राष्ट्रीय प्रयासः

हरियाणा में विद्रोही ताकतों की हार के बाद, विशेष रूप से नसीबपुर (नारनौल) की लड़ाई के बाद, राव तुला राम ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ अंतर्राष्ट्रीय समर्थन जुटाकर एक व्यापक रणनीतिक दृष्टिकोण अपनाया। यह समझते हुए कि ब्रिटिश साम्राज्य को हराने के लिए केवल क्षेत्रीय स्तर पर किया गया अकेला प्रतिरोध काफी नहीं होगा, उन्होंने अफगानिस्तान की ओर रुख किया।

अफगानिस्तान मध्य एशिया का एक ऐसा क्षेत्र था जिसका भू–राजनीतिक महत्व बहुत अधिक था, और वहाँ उन्होंने दोस्त मोहम्मद खान से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। उनका उद्देश्य अफगान नेतृत्व को इस बात के लिए राजी करना था कि वे भारत में अंग्रेजों के खिलाफ सैन्य कार्रवाई का समर्थन करें या उसे शुरू करें। उन्होंने अपने कूटनीतिक प्रयासों का विस्तार ईरान (फारस) तक भी किया, जहाँ उन्होंने राजनीतिक और सैन्य समर्थन की मांग की। इसके साथ ही, उन्होंने रूस से अप्रत्यक्ष समर्थन मिलने की संभावनाओं को भी टटोलाय रूस उस समय ग्रेट गेम के दौरान ब्रिटेन के साथ रणनीतिक प्रतिद्वंद्विता में उलझा हुआ था। ये पहले राव तुला राम की असाधारण दूरदर्शिता और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की उनकी गहरी समझ को दर्शाती हैं, क्योंकि उन्होंने एक क्षेत्रीय विद्रोह को एक व्यापक औपनिवेशिक–विरोधी आंदोलन में बदलने का प्रयास किया था[7]।

हालाँकि, उनके इस कूटनीतिक अभियान को कई महत्वपूर्ण सीमाओं का सामना करना पड़ा, क्योंकि विदेशी शक्तियाँ अंग्रेजों के साथ सीधे टकराव में उतरने को लेकर हिचकिचा रही थीं, और भारत के भीतर एक समन्वित नेतृत्व के अभाव ने विदेशों में उनकी स्थिति को कमजोर कर दिया था[8]। उनके ये प्रयास अंततः असफल ही रहे और 1863 में काबुल में उनकी मृत्यु के साथ ही ये प्रयास बीच में ही समाप्त हो गए। फिर भी, अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन बनाने के उनके प्रयास भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बाहरी कूटनीतिक जुड़ाव के एक प्रारंभिक उदाहरण के रूप में आज भी कायम हैं, और एक दूरदर्शी नेता के रूप में उनकी अमिट विरासत को उजागर करते हैं[9]।

संदर्भः

[1]एस.एन. सेन (1957), एटीन फिफ्टी सेवन, पब्लिकेशन डिवीजन, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 33–60
[2]बिपिन चन्द्र (2009), भारत का स्वतंत्रता संग्राम, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 55–78
[3]पर्सीवल स्पीयर (1990), भारत का इतिहास, खंड 2, पेंगुइन, नई दिल्ली, पृ. 162

[4] रणजीत गुहा (1983), औपनिवेशिक भारत में किसान विद्रोह के प्राथमिक पहलू, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 58
[5]एरिक स्टोक्स (1986), द पीजेंट आर्म्डः द इंडियन रिवोल्ट ऑफ 1857, क्लेरेंडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, पृ. 21
[6]फौजदार, राम सिंह (2010), हरियाणा में 1857 का विद्रोह, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, पृ. 45द्85।
[7]आर.सी. मजूमदार. (1963),द स्पॉय म्यूटिनी एंड द रिवोल्ट ऑफ 1857'. फिरमा ज्ञस्ड, कलकत्ता
[8]के.के. दत्ता. (1977), 'विद्रोह पर विचार '. बिहार सरकारी प्रेस, पटना
[9]एस.एन. सेन. (1957), ' अठारह सौ सत्तावन'. प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली